Himalayan Journal of Social Sciences & Humanities
(A Peer Reviewed Journal of Society for Himalayan Action Research and Development)
ISSN: 0975-9891

प्राचीन भारत में कर (टैक्स) की अवधारणा

देवेन्द्र दत्त पैन्यूली
संस्कृत विभाग, राजकीय स्ना. महाविद्यालय, उत्तरकाशी,

Manuscript Info

Manuscript History

Received : 07.10.2016
Revised : 11.11.2016
Accepted : 27.11.2016

कुंजी शब्द–

कर, बलि, शुल्क, दाप्य, देयक, कोषसंग्रह।

सारांश

प्राचीन भारत में प्रजा के हित के लिए प्रजा की सहमति से अनेक प्रकार के कर लेने का विधान था। कर लेने के लिए धर्म ग्रन्थों में प्रतिपादित नीति–नियमों को आधार माना जाता था। सामान्य रूप से अपने आय का छठा भाग कर के रूप में देने का नियम था जिससे वन में रहने वाले तपस्वी भी स्वीकार करते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है कि राजा को एक ही बार कर लेना चाहिए। महाभारत में कहा गया है कि राजा को मृदु उपायों से प्रजा से कर लेना चाहिए। अचानक प्रजा पर कर नहीं थोपना चाहिये। प्रजा में श्रोत्रिय वर्ग से किसी भी दशा में कर नहीं लेना चाहिए। व्यापारियों से कर के रूप में उनकी आय का तीस से पचास प्रतिशत तक भी वसूल किया जा सकता है। लेकिन जो प्रदेश राज्य की सीमाओं पर हों और उनके पास खाने के लिए थोड़ा–बहुत अन्न हो उनसे कर नहीं लेना चाहिए।

राज्य कोष में धन की वृद्धि तथा उससे प्रजा के कल्याण हेतु प्राचीन काल से ही प्रजा से कर लेने का नियम रहा है। राष्ट्र के हित में प्रजा की सहमति से कर का निर्धारण धर्मग्रन्थों में निहित नीति–नियमों के अन्तर्गत किया जाता रहा है। यही कारण है कि प्रजा की भावनाओं के अनुरूप कर लगाने पर राजा और प्रजा के बीच कभी भी कोई बड़ा विवाद सामने नहीं आया। धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित कर–व्यवस्था के अतिक्रमण का साहस बड़े–बड़े शासक भी नहीं कर पाये। राष्ट्र की उन्नति और सुरक्षा के निमित्त यद्यपि राजा के पास अन्य साधन भी हैं किन्तु उन सभी साधनों में कोष का संचय करना चाहिए।[1] कोष का संग्रह प्रजा द्वारा दिये गये कर से होता है। राजा को चाहिए कि वह प्रजा के हित के लिए ही प्रजा पर कर लगाये, लालच के वशीभूत होकर मात्र कोष वृद्धि के लिए कर न लगाये। महाकवि कालिदास[2] ने रघुवंशी राजाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि वे प्रजा के कल्याण के लिए कर लेते थे, लोभ के कारण नहीं। जिस प्रकार सूर्य नदियों और तालाबों से जल खींचकर उसे सौ गुना कर लौटा देता है उसी प्रकार राजा को कर लेना चाहिए और उसी प्रजा के हित में व्यय करना चाहिए।[3] प्राचीन समय में प्रजा को राजा पर विश्वास होता था कि उनसे लिए गये कर का राजा दुरुपयोग नहीं करेगा। अतः वे हर्षित होकर कर का भुगतान करते थे। सामान्यतः उपज या आय का छठा भाग प्रजा से कर के रूप में लिया जाता था।[4] महाकवि कालिदास ने रघुवंश में राजा दिलीप की उदारता का वर्णन करते हुए कहा है कि राजा दिलीप स्वयं नन्दिनी गाय का दुग्ध पीने से पहले बछड़े को पिलाते थे, फिर यज्ञ के लिए आवश्यक भाग निकाल लेते थे और शेष भाग को षष्ठ भाग के रूप में अपना अधिकार मानकर पृथ्वी के षष्ठ भाग की तरह ग्रहण करते थे।[5] केवल प्रजा ही नहीं अपितु वन में रहने वाले मुनि भी आश्रम में उत्पन्न होने वाले नीवारादि मुनि धान्यों का छठा भाग राज्य कर्मचारियों को स्वेच्छानुसार देते थे। यदि राज्य कर्मचारी उपस्थित न हों तो वे उस छठे भाग को नदी के तट प्रदेश पर अपना कर्तव्य समझकर रख

© SHARAD

लेते थे। तपस्वियों के तप का छठा भाग भी राजा को स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाता था जो उसे लौकिक उपज के छठे भाग से भी अधिक फलदायी तथा अनन्त काल तक पुण्यदायी बनाता था।[6] राज्य में अपराध की स्थिति और दण्ड की उपयुक्तता के अनुसार दण्ड दिया जाता था।[7] यदि कोई राजा को अपनी उपज की कमी दिखलाने के लिए स्वयं के खेत में चोरी करे तो चोरी किये हुए अन्न का आठ गुना कर के रूप में वसूल करने का विधान था। यदि कोई अपने ही गाँव में खड़ी फसल की चोरी करे तो उससे चोरी के माल का पचास गुना कर लेने का नियम कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वर्णित किया है। यदि वह दूसरे गाँव से चोरी करने आया हो तो उसे प्राणदण्ड की सजा देनी चाहिए।[8] राजा प्रजा से जैसे स्वाभाविक रूप से धर्म का छठा भाग प्राप्त कर लेता है वैसे ही अरक्षित प्रजा के द्वारा किये गये पाप का आधा भाग भी राजा को प्राप्त हो जाता है।[9]

याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि जो राजा अन्यायपूर्वक प्रजाओं से धन लेकर अपना कोष बढ़ाता है वह अपने बन्धु–बान्धवों सहित शीघ्र ही दरिद्र होकर नष्ट हो जाता है।[10] यदि प्रजा मे से कोई व्यक्ति कर से बचने के लिए मिथ्या परिमाण करता है या कर देने के स्थान से भागता है या विवादास्पद वस्तु को बेचता या खरीदता है, उससे वस्तु का आठ गुना कर लेने का विधान था।[11] याज्ञवल्क्य का स्पष्ट मत है कि न्यायपूर्वक प्रजाओं का पालन करने वाला राजा प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त कर लेता है।[12] मनु का विचार है कि राज्य के साफल संचालन के लिए राजा को अधिकार है कि वह छोटे–छोटे व्यापारियों से भी कुछ न कुछ कर ले।[13] यदि कारीगरी का काम करके जीवनयापन करने वाले, लोहार, बेलदार और बोझा ढोने वाले मजदूर कर देने में समर्थ न हों तो उनसे कर स्वरूप महीने में एक दिन का काम करा लेना चाहिए।[14] मनु के अनुसार जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और भ्रमर थोड़ा–थोड़ा अपना भक्ष्य खाते हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजाओं से थोड़ा–थोड़ा वार्षिक कर प्राप्त करना चाहिए।[15] महर्षि व्यास ने महाभारत में राजा युधिष्ठिर को राजधर्म की शिक्षा देते हुए पितामह भीष्म के मुख से कहलवाया है कि हे युधिष्ठिर! तुम माली के समान बनो। कोयला बनाने वाले के समान मत बनों । माली वृक्ष की जड़ को सीचता है और उसकी रक्षा करता है, तब उससे फल व फूल ग्रहण करता है। कोयला बनाने वाला उस वृक्ष को मूल सहित नष्ट कर देता है। तुम भी माली बनकर राज्य रूपी उद्यान को सींचकर सुरक्षित रखो और फल–फूल की तरह प्रजा से न्यायोचित कर प्राप्त करते रहो। कोयला बनाने वाले की तरह राज्य को जलाकर भस्म मत करो।[16]

महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है कि जैसे कोई व्यक्ति दूध देने वाली गाय की प्रतिदिन सेवा करता है और गाय से नित्य दूध प्राप्त करता है, उसी प्रकार उचित रीति से प्रजा से नियमित कर लेकर राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।[17] न्यायसंगत आय से राष्ट को सुरक्षित करते हुए जो राजा कर रूप में धन लेता है वह अपने कोष की अनुपम वृद्धि करता है।[18] चाणक्य का मत है बार–बार प्रजा से कर नहीं लेना चाहिए। केवल एक ही बार कर लेना चाहिए। यदि एक बार कर लेने से कोष की वृद्धि न हो सके तो समाहर्ता को चाहिए कि किसी कार्य का बहाना बनाकर नगर व प्रदेशवासियों से धन की याचना करे। विशेष रूप से धनी व्यक्तियों से उनकी हैसियत के अनुसार धन लें।[19] महाभारत का स्पष्ट कथन है कि राजा को देश और काल की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए, प्रजा के हित का संरक्षण करते हुए कर लेना चाहिए। भौंरे व बछड़े का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया गया है कि जैसे भौंरा धीरे–धीरे फूल और वृक्ष का रस लेता है वृक्ष को काटना नहीं है। जैसे मनुष्य बछड़े को कष्ट न देते हुए धीरे–धीरे गाय को दुहता है, उसके थनों को कुचलता नहीं है, उसी प्रकार राजा को कोमलता से राष्ट्र रूपी गौ का दोहन करना चाहिए।[20] जिस प्रकार जोंक धीरे–धीरे शरीर का रक्त चूसती है। उसी प्रकार राजा भी कोमलता के साथ कर वसूल करे। जैसे बाघिन अपने बच्चे को दाँत से पकड़कर इध्र से उधर ले जाती है परन्तु उसे न तो काटती है और न उसके शरीर में पीड़ा ही पहुँचने देती है। वैसे राजा भी कोमल उपायों से राष्ट्र का दोहन करे।[21] जिस प्रकार तीखे दांतों वाला चूहा सोये हुए मनुष्य के पैर के मांस को ऐसी कोमलता से काटता है कि वह मनुष्य केवल पैर को कम्पित करता है उसे पीड़ा का ज्ञान नहीं हो पाता। उसी प्रकार राजा को मृदु उपायो ंसे कर लेना चाहिए जिससे प्रजा दुखी न हो।[22] अतः राजा को धीरे–धीरे कर संग्रह करते हुए उसे थोड़ा–थोड़ा बढ़ाना चाहिए। और फिर बढ़े हुए कर का संग्रह करना चाहिए।[23] जिस तरह बछड़ों को पहले–पहले बोझा ढोने का अभ्यास कराने

© SHARAD

वाला पुरुष उन्हें प्रयत्नपूर्वक नाथता है फिर धीरे–धीरे उन पर अधिक भार लादता ही रहता है, उसी तरह राजा भी प्रजा पर कर का भार पहले कम रखे और पिफर धीरे–धीरे बढ़ावे।[23] अचानक प्रजा पर कर न थोपे। परिस्थिति और समय के प्रतिकूल होने पर भी कर का बोझ न डाले। समय आने पर प्रजा को समझा बुझा कर उचित रीति से कर वसूल करे।[24] महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजा प्रजा की आय का छठा भाग ग्रहण कर उचित शुल्क लेकर अपराधियों को आर्थिक दण्ड देकर शास्त्राानुसार व्यापारियों की रक्षा कर उनके दिये हुए वेतन से धन लेकर धन संग्रह करे।[25] शत्रुओं के आक्रमण से धन नाश हो जाने की दशा में ब्राह्मणेतर प्रजा से मधुर वाणी द्वारा धन प्राप्त करने की इच्छा करे।[26] कौटिल्य ने कर के सम्बन्ध में अलग–अलग व्यवस्थाएं दी हैं।

कौटिल्य का मत है कि सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूंगा, घोड़े और हाथी आदि व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी लागत का पचासवां हिस्सा टैक्स लिया जाय। सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसा, गन्ध जड़ी–बूटी और शराब पर चालीसवां हिस्सा, गेहूं, धन, अन्न, तेल घी, लोहा, बैलगाड़ी आदि पर तीसवां हिस्सा, बड़े–बड़े कारीगर व काँच के व्यापारी पर बीसवाँ हिस्सा, छोटे–छोटे कारीगरों और वैश्याओं पर दसवां हिस्सा, लकड़ी, बांस, पत्थर, मिट्टी के बर्तन, पकवान, हरे शाक पर पाँचवाँ हिस्सा टैक्स लेना चाहिए।[27] पेड़, मांस, मधु, घी, गन्ध, औषध, रस, फल–फूल, कन्दमूल, पत्ते, साग, तृण, चमड़ा, बांस के बर्तन, मिट्टी और पत्थर के बर्तन के लाभ का छठा हिस्सा लेना चाहिए।[28] कौटिल्य ने आय के हिसाब से कर लेने को कहा है।[29] बड़े या छोटे जनपदों से अन्न का तीसरा या चौथा भाग धन्यों का चतुर्थ भाग, वन में होने वाले अन्न, रूई, लाख, जूट, छाल, कपास, ऊन, रेशम, औषधि गन्ध, पुष्प, फल, शाक, लकड़ी, बांस, सूखा मांस आदि के लाभ का छठा भाग, हाथी दांत व गाय के चमड़े की आय का आधा भाग कर में लेना चाहिए।[30] मुर्गे और सूअर पालने वालों से आधा भाग, भेड़ बकरी पालने वालों से छठा भाग, गाय, भैंस, खच्चर, गधा, ऊँट पालने वालों से दसवां हिस्सा कर लेना चाहिए।[31] मनु ने भी कहा है कि राजा को व्यापारियों से पशु और सोने के लाभ का पचासवाँ भाग, कृषकों से अन्न का छठा भाग और बाहरवाँ भाग लेना चाहिए।[32]

कौटिल्य का कथन है कि जो प्रदेश राज्य की सीमाओं पर हो, जिनके पास अन्न बहुत थोड़ा हो, जो प्रजा के उपकारी हों, मिलों, मकानों, व्यापारिक मार्गों, खाली मैदानों, खानों, लकड़ी, हाथी के जंगलों से कर न लिया जाय।[33] नये बसने वाले किसानों से कर न लेकर उन्हें सरकार की ओर से अन्न, पशु और धन दिया जाय।[34] नट, नर्तक, गायक और वैश्याओं से आधा हिस्सा कर लिया जाय।[35] जो राजा शराबखाने, जुआरी, वैश्याओं, दलाल, बुरे पेशा वाले लोगों को नियम के अन्दर रखने में समर्थ नहीं होता वह इनके किये हुए पापकर्मो का चौथा भाग स्वयं खाता है।[36] प्रजा यदि पापी है तो उसका चौथा भाग और पुण्यात्मा है तो उनके पुण्य का चौथाई भाग राजा को प्राप्त हो जाता है।[37] जो राजकर्मचारी उचित कर से अधिक कर वसूल करते हैं या कराते हैं वे दण्ड के पात्र हैं।[38] प्रजा से धर्मानुकूल कर ग्रहण कर राजा राज्य की नीति के अनुसार आलस्य छोड़कर प्रजा को योगक्षेम करना चाहिए।[39] अरण्य में उत्पन्न अन्न और श्रोत्रिय से कर नहीं लेना चाहिए।[40] राजा को चाहिए कि वह संकट काल अर्थात् मृत्यु के संन्निकट होने पर भी श्रोत्रिय से कर न लें।[41] कौटिल्य का अभिमत है कि कोष का संकट होने पर राजा प्रजा के बीच यह किंवदन्ती फैला दें कि देव मन्दिर में भूमि को फाड़कर देवता प्रकट हुआ है, ऐसी भ्रान्ति से मन्दिर में जमा जन समुदाय से प्राप्त धनराशि को देवमन्दिर के पुजारी से प्राप्त कर राष्ट्र के कोष का संचय करते हुए प्रजा हित में लगा दें।[42] युधिष्ठिर को समझाते हुए भीष्म ने कहा कि इस प्रकार मधुर वाणी से प्रजा से कर संकलन करते हुए तुम्हें दण्ड धारण की शक्ति, मित्र तथा राज्य की प्राप्ति होगी और तुम सत्य और सरलता में तत्पर रहकर मित्र, कोष तथा बल से सम्पन्न हो जाओगे।[43]

सन्दर्भ सूची–

1. कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छः संगृह्णीयात्। कौटिल्यीय अर्थशास्त्रा–कोशाभिसंहरण, अध्याय–2
2. आगृध्नुराददे सो{र्थमसक्तः सुखमन्वभूत्। पाण्डेय–मिथिलेशि–2007, रा.प. नई दिल्ली, रघुवंश 1/21
3. प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्त्रागुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। रघुवंश 1/18, पाण्डेय मिथिलेश राधपब्लिकेशन्स दरियागंज नई दिल्ली 2007

© SHARAD

4. षष्ठांशवृत्तेरपि धर्मं एषः। अभिज्ञान शाकु. 5/4, विद्यालंकार–निरूपण, साहित्यभण्डार मेरठ, 2008
5. वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषं, गुरोरनुज्ञामधिगम्य मातः। औघस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं, षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।। रघुवंश 2/66, पाण्डेय मिथिलेश राधपब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2007
6. यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यः नृपाणां क्षयि तत्पफलम्।
   तपः षड्भागमक्षयं ददत्यारण्यका हि नः।। अभि. शाकुन्तलम् 2/13, विद्यालंकार निरूपण साहित्यभण्डार मेरठ, 2008
7. स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूयते।
   अप्यर्थकामौ तस्यासन् धर्म एव मनीषिणः।। रघुवंश 1/25, पाण्डेय मिथिलेश राधपब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2007
8. स्वसस्यास्यापहारिणः प्रतिपातोष्टगुणः। परस्यापहारिणः पंचाशद्गुणः। सीतात्ययः स्ववर्गस्य बाह्यस्तु वधः। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र–कोशाभिसंहरण, अध्याय–
9. अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्तियात्किंचित्किन्विषं प्रजाः। तस्मात्तु नृपतेरर्ध यस्माद् गृहणात्यसौ करान्।। याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय 337, राय–गंगासागर, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2011
10. अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोषं योभिवर्ध्येत्। सोचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धलः।। वही–340
11. मिथ्या वदन् परीमाणं शुल्कस्थानादपासरन्। दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च सव्याज क्रयविक्रयी।। वही–याज्ञ. व्यवहाराध्याय 262
12. पुण्यात्षड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्। वही–याज्ञ. आचा. 335
13. यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम्। व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम्।। मनुस्मृति 7/37, शास्त्राी गोपाल नेने, चौखम्बा संस्कृत भवन वाराणसी, 2066
14. वही मनस्मृति 7/138
15. वही मनुस्मृति 7/129
16. मालाकारोपमो राजन्! भव माडघ्गारिकोपमः।
   तथायुक्ताश्चिरं राज्यं भोक्तं शक्यासि पालयन्।। महाभारत शान्तिपर्व 71/20
17. वही 71/17
18. वही 71/18
19. कौटि. अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरणाध्याय।
20. महाभारत शान्तिपर्व 88/04
21. वही 88/05
22. वही 88/06
23. अल्पेनाल्पेन देयेन वर्धमानं प्रदापयेत्। ततो भूयस्ततो भूयः क्रमबृद्धि समाचरेत्।। वही 88/07
24. वही 88/12
25. वही 71/11
26. वही 71/21
27. कौटिल्य अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरण।
28. मनुस्मृति 7/131,132
29. कौटिल्य अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरण।
30. वही
31. वही

© SHARAD

32. मनुस्मृति 7/130, शास्त्री गोपालनेने–2066, चौखम्बा संस्कृत भवन।
33. कौटिल्य अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरण। वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी–2009.
34. धन्यपशुहिरण्यादिनिविशमानाय दद्यात्। वही
35. कुशीलवा रूपजीवांश्च वेतनार्ध दद्युः। वही
36. महाभारत शान्तिपर्व 88/18, गीताप्रेस सं. 2044.
37. तथा कृतस्य धर्मस्य चतुर्भागमुपाश्नुते। वही, 88/20.
38. वही 88/26
39. वही 71/12
40. अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरणाध्याय।
41. मनुस्मृति 7/133.
42. कौटिल्य अर्थशास्त्र कोशाभिसंहरण।
43. एवं दण्डं च कोशं च मित्रं भूमिं च लप्स्यसि।
सत्यार्जवपरो राजन् मित्रकोषबलान्वितः।। महाभारत शान्तिपर्व 88/33.

****

© SHARAD